International Journal of Multidisciplinary Horizon

ISSN: 3049-2017
IJMH 2025; 2(6): 146-147
© 2025 IJMH
www.themultijournal.com
Received: 22-12-2025
Accepted: 29-12-2025
Publish : 30-12-2025

कुलभूषण शारदा
शोधार्थी,
पंजाब विश्वविद्यालय,
चण्डीगढ़

Correspondence:
कुलभूषण शारदा
शोधार्थी,
पंजाब विश्वविद्यालय,
चण्डीगढ़

द्विसन्धान महाकाव्य में वर्णित उपदेशों से लोक कल्याण

कुलभूषण शारदा

संस्कृत साहित्य भारतीय सांस्कृतिक परम्परा की अमूल्य धरोहर है, जिसमें काव्य की विविध विधाओं का सशक्त विकास हुआ है। इसी क्रम में काव्य रचना में 'सन्धान-काव्य' का विशिष्ट स्थान है। धनञ्जयकृत 'द्विसन्धान महाकाव्य' को इस परम्परा की अक्षभूत कृति माना जाता है। कविवर धनञ्जय ने अपनी रचना में दो भिन्न कथाओं का ऐसा अद्भुत मिश्रण किया है कि पाठक दोनों कथाओं रामायण और महाभारत का रसास्वादन एक साथ कर सकता है। द्विसन्धान महाकाव्य का सूक्ष्मता से अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अनुपम इस महाकाव्य में लोक प्रकाश की ऐसी शिक्षा विद्यमान है जो पग-पग पर मानव मार्ग को प्रशस्त करती है। ये शिक्षाएं मानव मात्र के कल्याण के लिए बहुत उपयोगी है यह लोक मंगल उपदेश तत्कालीन समय के साथ-साथ आधुनिक समय में भी मानव मात्र को जीवन जीने की कला सिखाने के साथ-साथ सार्थक जीवन की महत्ता पर भी प्रकाश डालते हैं। धनञ्जय ने अपने काव्य में भारतीय समाज, संस्कृति, धर्म और नैतिक मूल्यों का सुंदर चित्रण किया है। उनकी रचना में जीवन के विविध पक्षों जैसे धर्म-अधर्म, वीरता-करुणा, नीति-अनीति, मन, वचन, कर्म, ज्ञान, विवेक, सत्याचर, धर्मपालन इत्यादि का सन्धान मिलता है, जिससे यह काव्य रत्नों से परिपूर्ण समुद्रवत भाषित होता है। कतिपय अधोलिखित लोकमंगलपरक उपदेशों का विवरण दिया जा रहा है। समाज की अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए द्विसंधानमहाकाव्य में जो शाश्वत उपदेश वर्णित हैं उनकी समीक्षा करना ही प्रस्तुत शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य है।

द्विसंधानमहाकाव्य की शिक्षा है कि सद्गुणी मनुष्य महानगुणों अथवा सद्गुणों की प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व अर्थात् अपनी सम्पति व प्राणों को बलिहार कर देते है । यदि विचार करें तो ज्ञात होता है कि जीवन व धन क्षणिक होते हैं परन्तु गुण अमर होते है । यदि किसी गुणसम्पन्न मनुष्य का अपना अर्थ या जीवन समर्पित कर उनके गुणों को अपने अन्दर समाहित कर लेता है तो किसी प्रकार ही हानि की संभावना नहीं रहती अपितु लाभ ही प्राप्त होता है। यथा-

अर्थान् प्राणान स्वान् विनयन्ते गुणहेतोस्तत्तद्ददभ्यस्तद्यदि दत्त्वा गुणिनः स्युः।[1]

इससे अभिप्राय है सद्गुणसम्पन्न व्यक्ति की संगति व सेवा से प्राप्त गुणों से जीवन बेहतर व सन्मार्ग पर प्रशस्त होकर सुखमय बनता है। अतः एक व्यक्ति के लिए गुण-प्राप्ति ही सर्वधन प्रधान सम्पति है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज का एक अभिन्न अंग है। व्यक्ति व्यष्टि है और समाज समष्टि। जीवन में उन्नति करने के लिए व विपति inाश के लिए कदापि नीति-पथ की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए क्योंकि नीतिपथ ही विपदाओं को नष्ट करता है तथा अभिलषित अर्थों को सहज ही प्रदान करने वाला होता है। यथा-

मातेव नीतिर्विपदां विहन्त्री नेया न सा कामदुघाऽवधूतिम्।[2]

इससे अभिप्राय है कि सुनीति के मार्ग पर चलकर ही मनुष्य समस्त संकटों और समस्याओं का सामना कर उनका शमन कर सकता है।

इतः परम द्विसंधानमहाकाव्य की शिक्षा है कि युद्ध व कलह, दोनों पक्षों के लिए महान् कष्टदायी होती है। यथा

दण्डारणिप्रकृतिरग्निरिवान्तरुत्थ-स्तापं-

तनोति हि महानुभयोर्विमर्दः।[3]

अर्थात् घिसने व घिसी जाने वाली लकड़ियों के मध्य से पैदा हुई स्वभाविक अग्निवत् संग्राम भी दोनों पक्षों को महान् कष्ट देता है। इससे अभिप्राय है कि ज्ञानवान् मनुष्यों को सर्वदा झगड़ों व विवादों से दूर रहने का प्रयास करना चाहिए। शाश्वत सुख व लाभ, शांति, संयम से प्राप्त होता है। विवेक के माध्यम से ही संग्राम को टाला जा सकता है।

एतदनन्तरम् द्विसंधानमहाकाव्य की शिक्षा है कि जो व्यक्ति स्वयं विनयशील होता है अर्थात् अहंकार का त्याग करके मधुरभाषी है वह दूसरे व्यक्तियों को शिष्ट बनाता है। यथा-

"स्वयं समानस्य शरासनानि स्तम्भश्च हित्वा मधुरं ध्वनन्ति।

प्रारेभिरेऽन्यान्विनतान्विधातुं परान्विनर्माः खलु नामयन्ति।।[4]

इससे तात्पर्य है कि विनययुक्त व सौम्य व्यवहार का अन्यों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है किन्तु इस व्यवहार का आरम्भ स्वयं से ही करना होता है, जिससे समाज में आदर्श स्थापित होते है ।

प्रायः देखने को मिलता है कि दुःख के समय में व्यक्ति सहजता, निष्कपटता व सत्य को ओर अग्रसर होता है। अतः कहते हैं कि विपति या दुःख केवल परीक्षा का इत्तेफ़ाक नहीं होती अपितु इससे व्यक्ति का वास्तविक स्वभाव व गुणों की पहचान करने में भी सहायता होती है। यथा द्विसंधानमहाकाव्यकार का कथन है-

प्रायशः परिजहाति जनोऽयं तीव्रमेव समुपेत्य शठत्वम्।[5]

अर्थात् लौकिक प्राणी तीव्र दुःख प्राप्त करके अपनी शठता अर्थात् दुष्टता का स्वयमेव त्याग कर देता है। इससे सिद्ध होता है कि जीवन में विपति को एक अनुभव के तौर पर स्वीकार करना व उससे शिक्षा लेना बुद्धिमता व विवेकशीलता का परिचायक है।

अनुसंधेय महाकाव्य की शिक्षा है कि वीर पुरुष विजय व धन की प्राप्ति के लिए किसी दूसरे पर आश्रित न होकर केवल अपने भुजबल पर ही विश्वस्त रहते हैं। यथा-

भुजबलाद्वीरोऽन्यस्माद्धनं जयमिच्छति।[6]

इससे तात्पर्य है कि एक पुरुषार्थी व साहसी व्यक्ति विजयादि की प्राप्ति के लिए अपनी क्षमता पर ही विश्वास करता है। क्योंकि अन्यों पर निर्भर रहकर विजय व धनादि की प्राप्ति प्रायः असुरक्षित व अनिश्चित होती है। आत्मशक्ति से प्राप्त सफलता सदैव यशस्वी व श्रेष्ठ होती है। अनुसंधेय महाकाव्य की स्पष्ट शिक्षा है कि राजाओं अथवा शासकों को कभी भी राज्यलक्ष्मी का अहंकार नहीं करना चाहिए तथा राज्यलक्ष्मी की अभिलाषा को भी मंद ही रखना चाहिए क्योंकि अन्त में पृथ्वी-पालन में असमर्थ शरीर भी नीरस हो जाता है। यथा-

भवेयुरन्ते विरसाः समं देहा विभूतयः।

राज्ञां माहंक्रिया भूवन्समन्देहाविभूतयः।[7]

यह संदेश राजनीति परक है। इसमें स्पष्ट शिक्षा है कि अहंकार व अतितृष्णा शासक के लिए हानिकारक होती है, जबकि नम्रता व संतुलन जीवन से शासन में स्थिरता आती है। यदि विचार करें तो संयम व संतुलन ऐसा धन है जो सुख, शान्ति, शक्ति व स्थिरता के लिए परमावश्यक है।

अतःउपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि द्विसंधानमहाकाव्य की शिक्षाएं सद्गुणों को ग्रहण करने, नीति पथ पर अग्रसर होने, विवेक रूपी धन से संग्राम अथवा विवाद को दूर करने, विनययुक्त व सौम्य व्यवहार करने, शठता को त्यागने, संतुलित जीवन जीने इत्यादि से मानव-जीवन में व्याप्त अज्ञान रूपी अन्धकार, निराशा, दुर्गुण, अनाचार इत्यादि को दूर करके ज्ञान, सन्तुष्टि, आचार, संयम व सुसंस्कृति इत्यादि के शाश्वत संदेश देते हैं।

पादटिप्पणी –

1. द्विसंधानमहाकाव्य, 13.18
2. वहीं, 11.33
3. वहीं, 11.34
4. वहीं, 5.59
5. वहीं, 5.66
6. वहीं, 5.69
7. वहीं, 18.3